नई शिक्षा नीति–2020 पाठ्यक्रम

विषय – संस्कृत (स्नातक)

कक्षा – बी०ए० प्रथम वर्ष, प्रथम सत्र (Sem.-I)

कोड – A-020101T संस्कृत पद्य–साहित्य

(भर्तृहरिविरचितं)

नीतिशतकम्

(श्लोक-1-25)

संकलनकर्त्ता:

डॉ.ओमपालसिंह: संस्कृतप्राच्यभाषाविभाग: चौधरीचरणसिंहविश्वविद्यालय:, मेरठम्

मङ्गलाचरणम्

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये।

स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे॥१॥

अन्वयः– दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये स्वानुभूत्येकमानाय शान्ताय तेजसे नमः।

अनुवाद– दिशा और काल आदि से असीमित (अतः) अनन्त, चैतन्यमात्र स्वरूप वाले, (केवल) एक स्वानुभूति (रूप) प्रमाण वाले, शान्त तेजोरूप (परमात्मा) को नमस्कार है।

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः।

अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम्॥२॥

अन्वयः– बोद्धारः मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः अन्ये च अबोधोपहताः (सन्ति अतः) सुभाषितम् अङ्गे जीर्णम्।

अनुवाद– कवि के सुभाषित वचनों का कोई भी व्यक्ति सच्चा पारसी नहीं है, क्योंकि विद्वद्वर्ग ईर्ष्याग्रस्त है तथा नृपवृन्द गर्व से मत्त है और अन्य साधारण शिक्षित लोग अज्ञान से दबे हुए हैं। अतः सुभाषित आज तक कवि के हृदय में ही रह गया, उसे बाहर निकलने का वसर ही नहीं प्राप्त हुआ। फिर भी कुछ कहना चाहिए। अतः कुछ कहता हूँ, शायद भविष्य में कोई कदरदान निकल आये।

अज्ञः मुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्माऽपि तं नरं न रञ्जयति॥३॥

अन्वयः– अज्ञः सुखम् आराध्यः, विशेषज्ञः सुखरतम् आराध्यते, किन्तु ज्ञानलवदुर्विदग्धं च तं नरं ब्रह्मा अपि न रञ्जयति।

अनुवाद– न जानने वाला (मूर्ख) सरलता से प्रसन्न किया जा सकता है, विद्वान् और अधिक सरलता से प्रसन्न किया जाता है, परन्तु (च) ज्ञान के लेश (= थोड़े से अंश) से (अपने को) पण्डित मानने वाले उस (अभिमानी) मनुष्य को ब्रह्मा भी प्रसन्न नहीं कर पाता।

टिप्पणी– अज्ञः= न जानाति इति अज्ञः, न√ज्ञा+क, न जानने वाला। सुखम्=सुख के साथ, सरलता से (क्रिया विश्लेषण)। **आराध्यः**= प्रसन्न करने योग्य, प्रसन्न किया जा सकता है, आ√राध्+ण्यत्। **विशेषज्ञः**= विशेषण जानाति इति विशेषज्ञः, जो बहुत अधिक जानता हो, विद्वान्, विशेष √ज्ञा+क+पुल्लिङ्ग, प्रथमा वि०, एकवचन। **ज्ञान०**=ज्ञानस्य लवेन (अंशेन) दुर्विदग्धम् (पण्डितम्मन्यम्), ज्ञान के थोड़े से अंश को प्राप्त कर जो अपने को पण्डित समझने लगता है। **दुर्विदग्धं**= दुर् वि√दह्+क्त। **तं**= उस (अभिमानी मनुष्य) को। **रञ्जयति**= प्रसन्न कर पाता है, √रञ्ज्+लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन। **आर्या छन्द।**

संकलनकर्त्ताः डॉ.ओमपालसिंहः संस्कृतप्राच्यभाषाविभागः चौधरीचरणसिंहविश्वविद्यालयः, मेरठम्

प्रसह्य मणिमुद्धरेन्मकरदंष्ट्राङ्कुरात्
समुद्रमपि सन्तरेत् प्रचलदूर्मिमालाऽऽकुलम्।
भुजङ्गमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद्धारयेत्
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत्।।४।।

अन्वयः– (पुरुषः) मकर–वक्त्र–दंष्ट्राङ्कुरात् प्रसह्य मणिम् उद्धरेत्, प्रचलद्–ऊर्मि–मालाकुलं समुद्रम् अपि सन्तरेत्, कोपितम् अपि भुजङ्गं शिरसि पुष्पवद् धारयेत्, प्रतिनिविष्टमुर्खजनचित्तं न आराधयेत्।

अनुवाद– (मनुष्य) चाहे मगर के मुख की डाढ़ की नोक से बलपूर्वक मणि को निकाल ले, चाहे चलती हुई लहरों के समूह से व्याप्त समुद्र को भी तैरकर पार कर ले, चाहे क्रुद्ध किए गए सर्प को भी सिर पर पुष्प के समान धारण कर ले, किन्तु मूर्ख मनुष्य के हठी चित्त को मना नहीं सकता।

लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्
पिबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः।
कदाचिदपि पर्यटञ्छशविषाणमासादयेत्
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत्॥५॥

अन्वयः– (पुरुषः) यत्नतः पीडयन् सिकतासु अपि तैलं लभेत्, पिपासार्दितः मृगतृष्णिकासु सलिलं पिबेत् च, पर्यटन् कदाचित् शशविषाणाम् अपि आसादयेत्, प्रतिनिविष्ट मूर्खजन चित्तं तु न आराधयेत्।

अनुवाद– मनुष्य प्रयत्नपूर्वक दबाता हुआ (पेरता हुआ) चाहे बालू में तेल प्राप्त कर ले, प्यास से व्याकुल होकर चाहे मृगतृष्णाओं में (भी) जल पी ले, घूमता हुआ चाहे कभी खरगोश के सींग को प्राप्त कर ले, किन्तु मूर्ख मनुष्य के हठी चित्त को मना नहीं सकता।

व्यालं बालमृणालतन्तुभिरसौ रौद्धुं समुज्जृम्भते
छेत्तुं वज्रमणिंशिरीषकुसुमप्रान्तेन संनह्यते।
माधुर्यं मधुविन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते
नेतुं वाञ्छति यः खलान् पथि सतां सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः॥६॥

अन्वयः– असौ बाल-मृणालतन्तुभिः व्यालं रोद्धुं समुज्जृम्भते, शिरीषकुसुम प्रान्तेन वज्र-मणीन् छेतुं संनह्यते, मधुविन्दुना क्षाराम्बुधेः माधुर्यं रचयितुम् ईहते, यः खलान् सुधास्यन्दिभिः सूक्तैः सतां पथि नेतुं वाञ्क्षति।

अनुवाद– वह (मनुष्य) नयी कमल-नालों के धागों से दुष्ट हाथी को बाँधने के लिए उद्यत होता है, शिरीष के फूल के किनारे से हीरे (वज्रमणि) को बेंधने को संनद्ध होता है, शहद की (एक) बूंद से खारे समुद्र को मीठा करना चाहता है, जो दुष्टों को अमृत बहाने वाले सुवचनों से सज्जनों के पथ पर ले जाना चाहता है क्योंकि दुष्ट कभी किसी की बात नहीं मानते, अतः उनको सदुपदेश देने से कोई लाभ नहीं होता।

स्वायत्तमेकान्तगुणं विधात्रा

विनिर्मितं छादनमज्ञतायाः।

विशेषतः सर्वविदां समाजे

विभूषणं मौनमपण्डितानाम्।।७।।

अन्वयः– विधात्रा अज्ञतायाः स्वायत्तम् एकान्तगुणं (मौनं) छादन विनिर्मितम्। (इदम्) सर्वविदां समाजे विशेषतः मौनम् अपण्डितानां भूषणम् (अस्ति)।

अनुवाद– विधाता ने मौन को मूर्खता को छिपाने वाला एक ऐसा परदा बनाया है जो मनुष्य के अपने अधीन है और जो केवल गुण रूप है। सर्वज्ञाता पण्डितों की सभा में विशेष रूप से मौन मूर्खों का भूषण है।

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किञ्चित्किञ्चिद् बुधजनसकाशादवगतं
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः॥८॥

अन्वयः– यदा अहं किञ्चिज्ज्ञः तदा द्विपः इव मदान्धः समभवम्, तदा सर्वज्ञ अस्मि इति मम मनः अवलिप्तम् (अभवत्), यदा बुधजन सकाशात किञ्चित् किञ्चित् अवगतम्, तदा मूर्खः अस्मि इति ज्वरः इव मे मदः व्यपगतः।

अनुवाद– जब मैं थोड़ा सा जानता था तो (मैं) हाथी के समान मद से अन्धा हो गया था (और) उस समय मेरा मन 'मैं सर्वज्ञ हूँ' इस प्रकार अभिमान में मर गया था, जब विद्वानों से मैंने कुछ-कुछ जाना इस प्रकार से कुछ (मैंने) जाना, तब 'मैं मूर्ख हूँ' इस प्रकार (जानकर) ज्वर के समान मेरा मद उतर गया।'

कृमिकुलचितं लालाक्लिन्नं विगन्धि जुगुप्सितं।
निरुपमरसं प्रीत्या खादन्नरास्थि निरामिषम्।।
सुरपतिमपि श्वा पार्श्वस्थं विलोक्य न शङ्कते।
न ही गणयति क्षुद्रो जन्तुः परिग्रहफल्गुताम्।।९।।

अन्वयः– श्वा कृमिकुलचितं, लालाक्लिन्नं, विगन्धि जुगुप्सितं, निरुपमरसं निरामिषं, नरास्थि प्रीत्या खादन् पार्श्वस्थं सुरपतिम् अपि विलोक्य न शङ्कते। हि क्षुद्रो जन्तुः परिग्रहफल्गुतां न हि गणयति।

अनुवाद– कुत्ता कीड़ों के समूह से व्याप्त, लार से भीगी हुई, दुर्गन्धयुक्त घृणित, अतुलित (बुरे) रस वाली, मांस रहित, मनुष्य की हड्डी को प्रेम से (या प्रसन्नता से) खाता हुआ समीप में स्थित इन्द्र को भी देखकर शङ्कित नहीं होता। (सच है) नीच प्राणी ग्रहण की गई (वस्तु की) निस्सारता पर ध्यान नहीं देता।

शिरः शार्वं स्वर्गात् पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरं
महीध्रादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि जलधिम्।
अधोऽधो गङ्गेयं पदमुपगता स्तोकमथवा
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः॥१०॥

अन्वयः– इयं गङ्गा स्वर्गात् शार्वं शिरः, पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरम्, उत्तुङ्गात् महिध्रात् अवनिम्, अवनेः च अपि जलधिम् (एवं) अधः अधः स्तोकं पदम् उपगता; अथवा विवेकभ्रष्टानां शतमुखः विनिपातः भवति।

अनुवाद– इस गङ्गा ने स्वर्ग से शिवजी के सिर पर, सिर से (हिमालय) पर्वत पर, ऊँचे पर्वत से पृथिवी पर और पृथिवी से भी समुद्र में, इस प्रकार नीचे-नीचे छोटे स्थान को प्राप्त किया। अथवा विवेक से भ्रष्ट हुए पुरुषों का सैंकड़ों प्रकार से पतन होता है।

शक्यों वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो
नागेन्द्रो निशिताङ्कुशेन समदो दण्डेन गोगर्दभौ।
व्याधिर्भेषजसङ्ग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषं
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम्॥११॥

अन्वयः– हुतभुक् जलेन वारयितुं शक्यः, सूर्यातपः छत्रेण, समदः नागेन्द्रः निशिताङ्कुशेन, गोगर्दभौ दण्डेन, व्याधिः भेषजसंग्रहैः च विषं विवधैः मन्त्रप्रयोगैः (वारयितुं शक्यम्)। सर्वस्य शास्त्रविहितम् औषधम् अस्ति, (किन्तु) मूर्खस्य औषधं नास्ति।

अनुवाद– अग्नि जल से शान्त की जा सकती है, सूर्य की धूप छाते से मत्त गजराज तेज अंकुश से, सांड और गधा डन्डे से, रोग औषधियों के संग्रह से और विष अनेक प्रकार के मन्त्रों के प्रयोग से। सभी की शास्त्रों द्वारा बताई गई औषधि है। (किन्तु) मूर्ख की (कोई) औषधि नहीं है।

साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः

साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।

तृणं न खादन्नपि जीवमान-

स्तद्भागधेयं परमं पशूनाम्॥१२॥

अन्वयः– साहित्य-सङ्गीत-कला-विहीनः (नरः) साक्षात् पुच्छ-विषाण-हीनः पशु (अस्ति)। तृणं न खादन् अपि जीवमानः तत् पशूनां परमं भागधेयम् (अस्ति)।

अनुवाद– साहित्य, सङ्गीत और कला से रहित (मनुष्य) साक्षात् पूँछ और सींगों से रहित पशु है। घास न खाता हुआ भी (वह जो) जीवित है, यह पशुओं का परम सौभाग्य है।

येषां न विद्या न तपो न दानं

ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।

ते मर्त्यलोके भुवि भारभूताः

मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति॥१३॥

अन्वयः– येषां न विद्या, न तपः, न दानं, (न) ज्ञानं, न शीलं, न गुणः, न धर्मः (अस्ति) ते मर्त्यलोके भुवि भारभूताः, मनुष्यरूपेण मृगाः चरन्ति।

अनुवाद– जिन (मनुष्यों) के (पास) न विद्या है, न तप है, न दान है, न ज्ञान है, न शील है, न गुण है, न धर्म है, वे (इस) मृत्युलोक में पृथिवी के ऊपर भार-समान हैं (और) मनुष्य के रूप में पशु घूम रहे हैं।

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह।

न मूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि॥१४॥

अन्वयः– वनचरैः सह पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वरम् (अस्ति)। मूर्ख-जन सम्पर्कः सुरेन्द्र-भवनेष्वपि वरं न (अस्ति)।

अनुवाद– वनचरों के साथ पर्वतों के दुर्गम (स्थलों) पर घूमना अच्छा है (किन्तु) मूर्ख लोगों का सम्पर्क इन्द्र के भवनों में भी अच्छा नहीं है।

शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः शिष्यप्रदेयाऽऽगमाः
विख्याताः कवयो वसन्ति विषये यस्य प्रभोर्निर्धनाः।
तज्जाड्यं वसुधाधिपस्य कवस्त्वर्थं विनापीश्वराः
कुत्स्याः स्युः कुपरीक्षिका हि मणयो यैरर्घतः पातिताः॥१५॥

अन्वयः– शास्त्रोपस्कृत-शब्द-सुन्दर-गिरः शिष्यप्रदेयागमाः विख्यातः कवयः यस्य प्रभोः विषये निर्धनाः वसन्ति तत् वसुधाधिपस्य जाड्यम्। कवयः तु अर्थं विना अपि ईश्वराः। यैः मणयः अर्घतः पातिताः ते कुपरीक्षिका हि कुत्स्याः स्युः।

अनुवाद– शास्त्रों द्वारा शोधित शब्दों से सुन्दर वाणी वाले, शिष्यों को दिए जाने योग्य विद्या वाले प्रसिद्ध कवि जिसके देश में निर्धन रहते हैं, यह (उस) राजा की मूर्खता है। कवि लोग तो धन के बिना भी राजा हैं। जिन्होंने मणियों को मूल्य से गिरा दिया, वे बुरे परीक्षक (= जौहरी) ही निन्दनीय हैं (न कि मणियाँ)।

हर्तुर्याति न गोचरं किमपि शं पुष्णाति यत्सर्वदा-

ऽप्यर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति वृद्धिं पराम्।

कल्पान्तेष्वपि न प्रयाति निधनं विद्याख्यमन्तर्धनं

येषां तान्प्रति मानमुज्झत नृपाः कस्तैः सह स्पर्धते॥१६॥

अन्वयः– येषां विद्याख्यम् अन्तर्धनम्, यत् हर्तुः गोचरं न याति, सर्वदा किमपि शं पुष्णाति, अर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानम् अनिशं हि परां वृद्धिं प्राप्नोति, कल्पान्तेषु अपि निधनं न प्रयाति, (हे) नृपाः, तान् प्रति मानम् उज्झत है, तैः सह कः स्पर्धते।

अनुवाद– जिन लोगों के पास विद्या नाम का गुप्त धन है, जो (विद्या-धन) चोर (की दृष्टि) का विषय नहीं बनता, सर्वदा किसी (अलौकिक) कल्याण को पुष्ट करता है, याचकों को दिया जाता हुआ निरन्तर परम वृद्धि को प्राप्त होता है, (हे) राजाओं, उन विद्वान् (लोगों) के प्रति अभिमान का त्याग कर दो; उनके साथ कौन स्पर्धा कर सकता है?

अधिगतपरमार्थान् पण्डितान् माऽवमंस्थाः

तृणमिव लघु लक्ष्मीर्नैव तान् संरुणाद्धि।

अभिनवमदलेखाश्यामगण्डस्थलानां

न भवति विसतन्तुर्वारणं वारणानाम्।।१७।।

अन्वयः– अधिगत् परमार्थान् पण्डितान् मा अवमंस्थाः, तृणम् इव लघु लक्ष्मीः तान् नैव संरुणाद्धि। बिसतन्तुः अभिवन–मदलेखाश्याम–गण्डस्थालानां वारणानां वारणं न भवति।

अनुवाद– परम तत्त्व को प्राप्त किए हुए (परम ज्ञानी) पण्डितों का अपमान मत करो, तिनके के समान तुच्छ लक्ष्मी उनको नहीं रोक सकती। मृणाल तन्तु ताजी मद-रेखा से श्याम हुए कपोल वाले हाथियों का रोधक नहीं होता।

अम्भोजिनीवननिवासविलासमेव

हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता।

न त्वस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धां

वैदग्ध्यकीर्त्तिमपहर्तुमसौ समर्थः॥१८॥

अन्वयः– नितरां कुपितो विधाता हंसस्य अम्भोजिनीवननिवासविलासम् एव हन्ति। असौ तु अस्य दुग्ध–जल–भेद–विधौ प्रसिद्धां वैदग्ध्यकीर्तिम् अपहर्तुं न समर्थः।

अनुवाद– अत्यधिक क्रुद्ध हुआ ब्रह्मा हंस के कमलिनियों के वन में निवास के आनन्द को ही नष्ट करता है, किन्तु वह (ब्रह्मा) इसके दूध और जल को अलग करने की विधि के सम्बन्ध में प्रसिद्ध निपुणता के यश का अपहरण करने में समर्थ नहीं है।

केयूरा न विभूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजाः।
वायेका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्॥१९॥

अन्वयः– पुरुषं न केयूराः विभूषयन्ति, न चन्द्रोज्ज्वलाः हाराः, न स्नानं, न विलेपनं, न कुसुमं, न अलङ्कृताः मूर्धजाः। एका वाणी, या संस्कृता धार्यते, पुरुषं समलङ्करोति। भूषणानि खलु क्षीयन्ते, वाग्भूषणम् सततं भूषणम् (अस्ति)।

अनुवाद– पुरुष को न बाजूबन्द शोभित करते हैं, न चन्द्रमा के समान उज्ज्वल हार, न स्नान, न (चन्दन आदि का) लेप, न पुष्प (और) न सजाए हुए केश। केवल एक वाणी, जो शुद्ध रूप से धारण की जाती है, पुरुष को सुशोभित करती है। (और सब) भूषण (गहने) निश्चित रूप से नष्ट हो जाते हैं, वाणी रूपी भूषण ही निरन्तर रहने वाला भूषण है।

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रछन्नगुप्तं धनं

विद्या भोगकारी यशःसुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः।

विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतं

विद्या राजसु पूजिता न हि धनं विद्याविहीनः पशुः॥२०॥

अन्वयः– विद्यानाम नरस्य अधिकं रूपं, प्रच्छन्नगुप्तं धनम्। विद्या भोगकारी यशःसुखकारी, विद्या गुरूणां गुरुः। विदेश–गमने विद्या बन्धुजनः। विद्या परं दैवतम्। विद्या राजसु पूजिता, न हि धनम्। विद्याविहीनः पशुः।

अनुवाद– विद्या मनुष्य का अधिक रूप है, ढका हुआ गुप्त (=छिपा हुआ या सुरक्षित) धन है। विद्या भोगों को देने वाली और यश तथा सुख को उत्पन्न करने वाली है। विद्या गुरु की गुरु है। विदेश जाने में विद्या आत्मीयजन (के समान) है। विद्या परम देवता है। विद्या राजाओं में पूजित है, न कि धन। विद्या से रहित (मनुष्य) पशु है।

क्षान्तिश्चेत् कवचेन किं किमरिभिः क्रोधोऽस्ति चेद् देहिनाम्,
ज्ञातिश्चेदनलेन किं यदि सुहृद् दिव्यौषधैः किं फलम्।
किं सर्पैर्यदि दुर्जनाः किमु धनैर्विद्याऽनवद्या यदि,
क्रीडा चेत्किमु भूषणैः सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम्॥२१॥

अन्वयः– देहिनां क्षान्तिः चेत् कवचेन किम्, क्रोधः अस्ति चेत् अरिभिः किम्, ज्ञातिः चेद् अनलेन किम्, यदि सुहृद् दिव्यौषधैः किं फलम्, यदि दुर्जना सर्पैः किम्, यदि अनवद्या विद्या धनैः किमु, क्रीडा चेत् भूषणैः किमु, यदि सुकविता अस्ति राज्येन किम्।

अनुवाद– देहधारियों के पास यदि क्षमा है तो कवच से क्या (फल) है (क्योंकि क्षमा द्वारा ही दुष्ट से रक्षा हो सकती है), यदि क्रोध है तो शत्रुओं से क्या (फल) है (क्योंकि क्रोध ही उनका नाश कर सकता है), यदि जाति-भाई है तो अग्नि से क्या (फल) है (क्योंकि जाति-भाई ही उसे जलाने को अर्थात् दुःख देने को या ईर्ष्या के कारण जलाने को पर्याप्त है), यदि मित्र है तो दिव्य औषधियों से क्या (फल) है (क्योंकि मित्र ही सब रोगों को दूर भगा सकता है), यदि दुर्जन है तो सर्पों से क्या (फल) है (क्योंकि दुर्जन ही डसने को अर्थात् पीड़ित करने को पर्याप्त है), यदि प्रशंसनीय विद्या है तो धन से क्या लाभ है (क्योंकि विद्या द्वारा ही सुख प्राप्त हो सकता है), यदि लज्जा है तो आभूषणों से क्या (लाभ) है (क्योंकि लज्जा ही आभुषण का कार्य करती है) और यदि सुकविता है तो राज्य से क्या (लाभ) है (क्योंकि काव्य-साम्राज्य जन-साम्राज्य से भी बढ़कर है)

दाक्षिण्यं स्वजने दया परजने शाठ्यं सदा दुर्जने

प्रीतिः साधुजने नयो नृपजने विद्वज्ज्नेष्वार्जवम्।

शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरुजने नारीजने धूर्तता

ये चैवं पुरुषाः कलासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थितिः॥२२॥

अन्वयः– स्वजने दाक्षिण्यं, परजने दया, दुर्जन सदा शाठ्यम्, साधुजने प्रीतिः, नृपजने नयः, विद्वज्जनेषु आर्जवम्, शत्रुजने शौर्यम्, गुरुजने क्षमा, नारीजने धूर्तता एवं च ये पुरुषाः कलासुः, कुशलाः तेषु एव लोकस्थितिः।

अनुवाद– अपने लोगों पर उदारता, पराए लोगों पर दया, दुर्जनों के प्रति शठता, सज्जनों के प्रति प्रेम, राजाओं के प्रति नीति, विद्वानों के प्रति सरलता, शत्रुजनों के प्रति शूरता, गुरुजनों के प्रति क्षमा, स्त्रियों के प्रति धूर्तता-इस प्रकार जो पुरुष कलाओं में कुशल है उन्हीं पर लोकों की स्थिति है।

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं

मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।

चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं

सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम्॥२३॥

अन्वयः– (सत्सङ्गति) धिः जाड्यं हरति, वाचि सत्यं सिञ्चति, मानोन्नतिं दिशति, पापम् अपाकरोति, चेतः प्रसादयति, दिक्षु कीर्तिं तनोति, कथय सत्सङ्गतिः पुंसां किं न करोति।

अनुवाद– (सत्संगति) बुद्धि की जड़ता को हरती है, वाणी में सत्य को सींचती है, सम्मान को बढ़ाती है, पाप को दूर करती है, चित्त को प्रसन्न करती है। दिशाओं में कीर्ति फैलाती है, कहो सत्सङ्गति मनुष्य के लिये क्या नहीं करती।

जयति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।

नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्॥२४॥

अन्वयः– ते सुकृतिनः रस-सिद्धाः कवीश्वराः जयति येषां यशःकाये जरा मरणजं भयम् नास्ति।

अनुवाद– वे पुण्यात्मा रस-सिद्ध कवि श्रेष्ठ विजयी होते हैं जिनके यश रूपी शरीर में बुढ़ापे और मृत्यु से उत्पन्न भय नहीं है।

सूनुः सच्चरितः सती प्रियतमा स्वामी प्रसादोन्मुखः
स्निग्धं मित्रमवञ्चकः परिजनो निष्क्लेशलेशं मनः।
आकारो रुचिरः स्थिरश्च विभवो विद्यावदातं मुखं
तुष्टे विष्टपहारिणीष्टदहरौ संप्राप्यते देहिना॥२५॥

अन्वयः– विष्टप–हारिणि–इष्टद–हरौ तुष्टे (सति) देहिना सच्चरितः सूनुः सती प्रियतमा, प्रसादोन्मुखः स्वामी, स्निग्धं मित्रम्, आवञ्चकः परिजनः, निष्क्लेशलेशं मनः, रुचिरः, आकारः, स्थिरः विभवः, विद्यावदात्तं च मुखं सम्प्राप्यते।

अनुवाद– संसार को प्रसन्न करने वाले और इच्छित वस्तु को देने वाले भगवान् विष्णु के सन्तुष्ट हो जाने पर देहचारी (मनुष्य) के द्वारा अच्छे वातावरण वाला पुत्र, सती प्रियतमा (अर्थात् पत्नी), अनुग्रहणशील स्वामी, स्नेह-युक्त मित्र, छलरहित बन्धुजन, क्लेश के अंश से भी रहित (अर्थात् सर्वथा क्लेश रहित) मन, सुन्दर आकृति, स्थिर वैभव और विद्या से उज्ज्वल मुख प्राप्त किया जाता है।

भर्तृहरिशतक के रचनाकार की भर्तृहरि का संक्षेप में जीवन-परिचय

भारतीय परम्परा के अनुसार भर्तृहरि मालवा प्रदेश के निवासी थे तथा जाति के क्षत्रिय थे। इनका जन्म एक राजघराने में हुआ था। गन्धर्वसेन की दो स्त्रियाँ थीं। एक से भर्तृहरि का जन्म हुआ और दूसरी से मालवा की महारानी धाराधिपति की पुत्री से विक्रमादित्य उत्पन्न हुए थे। धारानरेश का अपना कोई पुत्र नहीं था। अतः उन्होंने स्नेह से विक्रमादित्य के साथ-साथ भर्तृहरि को भी अपने यहाँ रखकर अनेक गुरूओं से धर्मशास्त्र, धनुर्विद्या, नीति-शास्त्र, संगीत आदि की शिक्षा दिलवाई और अपने दौहित्र विक्रमादितय को अपना राज्य देने का विचार किया, किन्तु विक्रमादित्य ने बड़े भाई के रहते स्वयं राजा बनना स्वीकार नहीं किया, प्रत्युत प्रयास करके अपने नाना से भर्तृहरि को ही राजा बनवाया और स्वयं उनका मन्त्री बनकर उनको शासन चलाने में सहयोग दिया। कुछ दिनों बाद मालवा की राजधानी धारानगरी से बदलकर उज्जैन हो गयी। राजसत्ता पाकर भर्तृहरि इतने विषयासक्त हो गये कि उनका सारा समय भोग विलास में ही बीतने लगा। बार-बार विक्रमादित्य के समझाने पर भी उन्होंने उनकी एक भी न सुनी और अन्ततोगत्वा उसे राज्य से निर्वासित कर दिया। राज्य छोड़कर विक्रमादित्य के चले जाने पर भर्तृहरि का जीवन-चरित्र अत्यधिाक विषय-वासनाग्रस्त हो गया। इसी अवसर पर एक ऐसी घटना घटी, जिसका विषयासक्त भर्तृहरि के हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा।

संकलनकर्त्ताः डॉ.ओमपालसिंहः संस्कृतप्राच्यभाषाविभागः चौधरीचरणसिंहविश्वविद्यालयः, मेरठम्

नीतिशतक की मौलिक विशेषताएं

नीतिशतक के प्रायः प्रत्येक पद्य में नैतिकता का उल्लेख है। जिसमें भर्तृहरि ने लौकिक-व्यवहार के ज्ञान का स्वाभाविक शब्दों में सूक्ष्म विवेचित करते हुए उत्तम से उत्तम उपदेश दिये हैं तथा सद्गुणों को ग्रहण करने का आग्रह किया है, जिनके अनुशीलन में सबका कल्याण निहित है। भर्तृहरि ने नीतिशतक के पद्यों में सन्तोष करने का उपदेश, विद्या की प्रशंसा, चाटुकारों का स्वभाव, विवेकहीन पुरूष का पतन, धन, भाग्य, महापुरूष एवं सत्संगति की महिमा, आत्मगौरव का निर्देश, सत्पुरूषों के लिये असिधारा व्रत, शील-स्वभाव का प्रदर्शन और मानव कल्याण के सर्वमान्य मार्ग आदि का प्रभावोत्पादक चित्रण किया है। इसके अतिरिक्त इसमें यह भी कहा गया है कि स्वजनों पर उदारता, सेवक आदि परिजनों पर दया, दुष्टों से दुष्टता, सज्जनों से प्रीति, राजपुरूषों के साथ नीति, विद्वानों के साथ नम्रता और शत्रुओं के साथ वीरता का व्यवहार करने वाले लोगों पर ही संसार टिका हुआ है। जो ऐसे व्यवहार में निपुण है, उनका अवश्य ही कल्याण होता है। दैनिक जीवन के प्रत्यक्ष सत्य का भर्तृहरि ने नीतिशतक में हृदयग्राही वर्णन किया है। इस प्रकार नीतिशतक में उपदृष्टि भर्तृहरि की नीति और उपदेश मानवमात्र का कल्याण करने हेतु उपयुक्त है।

संकलनकर्त्ताः डॉ.ओमपालसिंहः संस्कृतप्राच्यभाषाविभागः चौधरीचरणसिंहविश्वविद्यालयः, मेरठम्

भर्तृहरि की कृतियाँ

भर्तृहरि की कृतियों का अन्वेषण करने पर पता चलता है कि इनके भर्तृहरिशतक नामक मौलिक कृति का निर्माण किया था, इनके तीन दशक हैं– नीतिशतक, शृङ्गारशतक तथा वैराग्यशतक। भर्तृहरि वाक्यपदीय के भी रचयिता माने जाते हैं। वाक्यपदीय भी तीन खण्डों में विभक्त है। भर्तृहरि की कृति वाक्यपदीय में व्याकरणशास्त्र के दार्शनिक सिद्धान्तों का पद्यों में मार्मिक विवेचन है। इसके अतिरिक्त महर्षि पतञ्जलि के महाभाष्य के कुश अंशों पर भी भर्तृहरि द्वारा टीका लिखने का यत्र-तत्र संकेत प्राप्त होता है। इस प्रकार भर्तृहरिशतक, वाक्यपदीय और महाभाष्य की टीका– ये इनकी कृतियाँ हैं।

कवि भर्तृहरि का काल

भर्तृहरि के अनुज विक्रमादित्य से सम्बद्ध कथाओं का एक संग्रह सिंहासन-द्वात्रिंशिका या द्वात्रिंशत्पुत्तलिका में सुरक्षित विक्रमाङ्कदेवचरित से इनके जीवन पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है, किन्तु भर्तृहरि के चरित के विषय में लोकप्रसिद्ध दन्तकथाओं एवं विदेशी यात्राओं के लेखों के अतिरिक्त कोई भी प्रामाणिक आधार उपलब्ध नहीं होता। इस प्रकार योगिराज भर्तृहरि के स्थितिकाल का निश्चयात्मक ज्ञान उपलब्ध नहीं होता है। अतः विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत है। यदि लोकप्रसिद्ध जनश्रुति के आधार पर राजा भर्तृहरि को विक्रमादित्य का बड़ा भाई मान लिया जाये, जिन्होंने 644 ई. में हरुर की लड़ाई में हूणों को पराजित किया था, तो उनका समय छठी शती का उत्तरार्द्ध सिद्ध होता है। ईसा की सातवीं शती के अनत में वर्तमान अमरुक कवि द्वारा निर्मित शतक के पद्य भर्तृहरि के शृङ्गारशतक के पद्यों से विशेष प्रभावित है। अतः भर्तृहरि का समय 700 ई. के अमरुक कवि से पहले का रहा होगा। इसके अतिरिक्त भर्तृहरि को अमरुक का समसामयिक मान लेने पर भी भर्तृहरि का समय छठी शती का उत्तरार्द्ध ही निश्चित किया जा सकता है।

भर्तृहरि की काव्यकला

भर्तृहरि की काव्यकला अनुपम है। शैली की दृष्टि से रोचकता, भावों की उदारता, शब्दों का विन्यास एवं उक्तिवैचित्र्य आदि काव्य-कौशल की दृष्टि से इनका काव्य अत्यन्त रोचक एवं उपदेशप्रद है। उसमें माधुर्य, ओज, प्रवाह एवं पदलालित्य प्रचुर मात्रा में दृष्टिगोचर होते हैं। इनके पद्यों को पढ़ते-पढ़ते ही तात्पर्य व्यक्त हो जाता है। इनकी वाक्ययोजना सीधी-सादी और प्रभावशालिनी है। इनके शतक प्रसाद एवं माधुर्य गुणों से ओत-प्रोत है और इनका वर्णन स्वाभाविक एवं प्रसङ्गोचित है। इनके शतकों में छन्द तथा अलङ्कारों का चयन भी अत्यन्त कौशल एवं स्त्रग्धरा तथा अलङ्कारों में उपमा, रूपक, दृष्टान्त, स्वभावोक्ति और अतिश्योक्ति का बाहुल्य है। ये उपदेशात्मक नीकिाव्य जिस प्रकार विषय की दृष्टि से विचित्र है, वैसे ही उनके अधिकांश निर्माताओं का धर्म-धाम, जन्म स्थान आदि का इतिहास भी बड़ा ही विचित्र है, इसलिए उन सूक्तिकारों के जीवन पर प्रकाश डालने के लिए किंवदन्तियों का ही सहारा लेना पड़ता है।

संकलनकर्त्ताः डॉ.ओमपालसिंहः संस्कृतप्राच्यभाषाविभागः चौधरीचरणसिंहविश्वविद्यालयः, मेरठम्

भर्तृहरि के विषय में किंवदन्तियाँ

ऐसा सुना जाता है कि किसी ब्राह्मण ने भर्तृहरि पर प्रसन्न होकर उन्हें एक ऐसा फल दिया, जो आयुर्वर्द्धक था। राजा ने उस फल को स्वयं न खाकर प्राणों से भी अधिक प्रिय अपनी रानी पद्माक्षी या अनङ्गसेना को दे दिया, पर उस रानी ने भी फल को स्वयं न खाकर अपने एक गुप्त प्रेमी को दे दिया और उसने भी उस दिव्य फल के महत्त्व को जानकर उसे अपनी प्रियतमा एक वेश्या को दे दिया। वेश्या ने भी उसे स्वयं न खाकर अपने मन में चिन्तन करके कि यह फल यदि राजा को अर्पण किया जाये, तो वह उसे खाकर अधिक दिनों तक जीवित रह सकता है और प्रजा का भली-भाँति पालन-पोषण कर सकता है। अतः इस भावना से उसने वह फल राजा भर्तृहरि को दे दिया। पुनः वही फल पाकर भर्तृहरि ने आश्चर्यचकित होकर इस रहस्य को पता लगाया तो उन्हें पता भी चल गया। तब उन्होंने विषण्ण होकर अपने मन में सोचा– ओह, मैं जिस प्रियतमा स्त्री का निरन्तर चिन्तन करता हूँ, वह मुझसे विरक्त है और वह किसी दूसरे पुरूष को चाहती है। वह पुरूष भी उससे विरक्त हो किसी अन्य स्त्री में अनुरक्त है और मेरे लिए कोई दूसरी ही स्त्री प्रसन्न होती है। यह कामदेव की कितनी बड़ी विड़म्बना है। इसलिए उस मेरी प्रियतमा स्त्री को, उसके अभिलाषी पुरूष को, कामदेव को, इस स्त्री को तथा मुझे धिक्कार है– इसका स्पष्ट स्वरूप उनके काव्यों में उपलब्ध है–

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता साऽप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः।
अस्मत्कृते च परिशुष्यति काचिदन्या धिक्ताञ्च तं च मदनं च इमां च मां च।।

गीतिकाव्यों की परम्परा

गीतिकाव्यों के क्षेत्र में महाकवि कालिदास का ऋतुसंहार पहली कृति है। शृङ्गारतिलक का प्रणेता महाकवि कालिदास से भिन्न कोई दूसरा ही कालिदास नामधारी कवि हुआ है। अमरुकशतक गीति-ग्रन्थ का निर्माता कुछ विद्वान स्वामी शङ्कराचार्य को बताते हैं, किन्तु यह धारणा अब निराकृत हो चुकी है। वस्तुतः अमरुक नामक एक राजा ने अमरुकशतक का निर्माण किया ह। इसके बाद भर्तृहरि ने शृङ्गारपरक, नीति-परक तथा ज्ञानपरक तीन शतकों का निर्माण किया है। अनन्तर कश्मीर के महाकवि बिल्हण ने अपनी प्रणयकथा को चौरपञ्चाशिका के रूप में प्रकट किया। बाद में बंगाल के विद्वत्सेवी लक्ष्मण-सेन के आश्रित जयदेव कवि ने उत्तम काव्य गीत-गोविंद की रचना की है : गीत-गोविन्द के ही अनुकरण का वि श्वनाथ सिंह का संगीतरघुनन्दन है। इसी परम्परा में सुप्रसद्धि काव्यशास्त्री आनन्दवर्द्धन ने देवीशतक, बाणभट्ट ने चण्डीशतक और उसे श्वसुर मयूरकवि ने सूर्यशतक लिखा। गीतिकाव्यों की परम्परा में ही स्वामी शङ्कराचार्य की सौन्दर्यलहरी, पण्डितराज जगन्नाथ की गङ्गालहरी आदि का भी स्थान है। इस प्रकार संस्कृत साहित्य में प्राचीन काल से ही गीतिकाव्यों का प्रमुख स्थान रहा है, जिनसे साहित्य का भण्डार भरा पड़ा है।

परीक्षोपयोगी अभ्यास

१. प्रश्न– नीतिशतक के रचयिता कौन हैं?

उत्तर– योगिराज भर्तृहरि।

२. प्रश्न– संस्कृत-साहित्य का काव्य-क्षेत्र कितने भागों में विभक्त है?

उत्तर– संस्कृत-साहित्य का काव्यक्षेत्र दो भागों में विभक्त है– दृश्यकाव्य तथा श्रव्यकाव्य।

३. प्रश्न– श्रव्यकाव्य के कितने भेद हैं?

उत्तर– श्रव्यकाव्य के तीन भेद होते हैं– पद्यकाव्य, गद्यकाव्य तथा चम्पू-काव्य।

४. प्रश्न– पद्यकाव्य के कितने भेद होते हैं?

उत्तर– पद्यकाव्य के तीन भेद होते हैं– महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीतिकाव्य।

५. प्रश्न– महाकाव्यों की क्या विशेषता है?

उत्तर– महाकाव्यों में लोकप्रसिद्ध ऐतिहासिक महापुरुषों के चरित्र-चित्रण के साथ-साथ अनेक प्रासङ्गिक विषयों का भी वर्णन रहता है।

६. प्रश्न– खण्डकाव्य की क्या विशेषता है?

उत्तर– खण्डकाव्य में जीवन एकदेशीयता रहती है। इसमें आद्योपान्त एक ही कथानक का एकदेशीय विवेचन रहता है, भले ही वह धार्मिक विषय हो या नैतिक अथवा शृङ्गारिक।

७. प्रश्न– गीतिकाव्य के अन्तर्गत कौन-कौन आते हैं?

उत्तर– गीतिकाव्य के अन्तर्गत मुक्तक काव्य और प्रबन्ध काव्य आते हैं।

८. प्रश्न– मुक्तकाव्य की सबसे बड़ी विशेषता क्या है?

उत्तर– मुक्तकाव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें एक ही पद्य में किसी रस की पूर्ण अभिव्यक्ति रहती है या किसी अत्युपयोगी विषय का चित्रण रहता है। इसका प्रत्येक पद्य स्वतन्त्र होता है। मुक्तकों में पदलालित्य, अर्थगाम्भीर्य एवं दृष्टान्त आदि हृदयग्राही होते हैं। इनके प्रतिपाद्य विषय मानव-जीवन का कोई आवश्यक पक्ष– नीति, शृङ्गार अथवा वैराग्य आदि होते हैं।

९. प्रश्न– भर्तृहरि के तीनों शतक किस काव्य के अन्तर्गत आते हैं?

उत्तर– भर्तृहरि के तीनों शतक गीतिकाव्य के अन्तर्गत मुक्तकाव्य माने जाते हैं।

१०. प्रश्न– भर्तृहरि का समय कब माना जाता है?

उत्तर– भर्तृहरि के तीनों शतक गीतिकाव्य के अन्तर्गत मुक्तकाव्य माने जाते हैं।

११. प्रश्न– योगिराज भर्तृहरि की रचना कौन-कौन है?

उत्तर– योगिराज भर्तृहरि की रचना– भर्तृहरिशतक, (नीतिशतक, शृङ्गार-शतक तथा वैराग्यशतक) वाक्यपदीय और महाभाष्य की टीका है।

१२. प्रश्न– शतकयत्रम् में किसकी गिनती की जाती है?

उत्तर– शतकत्रयम् में नीतिशतक, शृङ्गारशतक तथा वैराग्यशतक की गणना की जाती है।

१३. प्रश्न– तीनों शतकों में भर्तृहरि की उत्तम कृति कौन है?

उत्तर– तीनों शतकों में भर्तृहरि का वैराग्यशतक सर्वोत्तम कृति है।

१४. प्रश्न– वैराग्यशतक का वर्ण्य विषय क्या है?

उत्तर– वैराग्यशतक में सांसारिक सुखों की अस्थिरता तथा मानवीय जीवन की दु:खमयता का प्रभावोत्पादक चित्रण है। तदनुसार सन्तोष को परम धन एवं वैराग्य को इसका साधन माना गया है।

१५. प्रश्न– शृङ्गारशतक का प्रतिपाद्य विषय क्या है?

उत्तर– शृङ्गारशतक में शृङ्गार का उद्दाम विलास चित्रित है। इसके प्रसंगों में काम की विभिन्न स्थिति, युवक-युवतियों की विविध प्रणयक्रीड़ा, स्त्रियों के हाव-भाव, कटाक्ष एवं शृङ्गारिक चेष्टाओं का हृदयस्पर्शी वर्णन है।

१६. प्रश्न– नीतिशतक का प्रतिपाद्य विषय क्या है?

उत्तर– नीतिशतक व्यावहारिक उपदेशों का भण्डार है। इसमें अङ्कित पद्य इतने मार्मिक, यथार्थ और अनुभूति-प्रधान है कि वे तत्काल ही हृदयङ्गम होकर अध्येताओं को कल्याण-पथ पर प्रवृत्त होने की प्रेरणा देते हैं।

१७. प्रश्न– योगिराज भर्तृहरि कहाँ के रहने वाले थे?

उत्तर– योगिराज भर्तृहरि मालवा प्रदेश के निवासी थे तथा क्षत्रिय जाति के थे।

१८. प्रश्न– भर्तृहरि के पिता कौन थे?

उत्तर– भर्तृहरि के पिता गन्धर्वसेन थे।

१९. प्रश्न– गन्धर्वसेन की कितनी पत्नियाँ थीं?

उत्तर– गन्धर्वसेन की दो पत्नियाँ थीं।

२०. प्रश्न– विक्रमादित्य के ज्येष्ठ भ्राता कौन थे?

उत्तर– विक्रमादित्य के ज्येष्ठ भ्राता भर्तृहरि थे।

२१. प्रश्न– मालवा की राजधानी धारानगरी से बदलकर कहाँ की गई थी?

उत्तर– मालवा की नई राजधानी उज्जैन बनाई गई थी।

२२. प्रश्न– भर्तृहरि की नृशंसता का क्या परिणाम हुआ?

उत्तर– भर्तृहरि की नृशंसता से प्रजा में आतङ्क उपस्थित हो गया तथा राज्य में अशान्ति फैल गयी और राज्य-व्यवस्था असन्तुलित हो उठी।

२३. प्रश्न– आयुर्वर्द्धक दिव्य फल भर्तृहरि को किसने दिया था?

उत्तर– आयुर्वर्द्धक दिव्य फल भर्तृहरि पर प्रसन्न होकर किसी ब्राह्मण ने दिया था।

२४. प्रश्न– इस संसार में कितने तरह के प्राणी होते हैं तथा कौन-कौन?

उत्तर– इस विश्व में तीन तरह के प्राणी होते हैं– अज्ञ, विशेषज्ञ और मूर्ख।

२५. प्रश्न– विद्वानों की सभा में मूर्खों को क्या गुणकारी है?

उत्तर– विद्वानों की सभा में मूर्खों द्वारा मौन धारण करना अत्यन्त गुणकारी होता है।

२६. प्रश्न– साहित्य, सङ्गीत तथा कला से हीन पुरूष को कवि ने क्या कहा है?

उत्तर– साहित्य, सङ्गीत तथा कला से विहीन पुरूष को कवि ने बिना सींग एवं पूँछ का साक्षात् पशु कहा है।

२७. प्रश्न– विद्या, तप, दान, ज्ञान, शील से हीन मनुष्य को कवि ने क्या कहा है?

उत्तर– ऐसे गुणों से हीन मनुष्य तो पृथ्वी के भारस्वरूप पशु ही हैं, जो मनुष्य के रूप में विचरते रहते हैं।

२८. प्रश्न– 'क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्' की व्याख्या करें?

उत्तर– अन्य सभी प्रकार के आभूषण नष्ट हो जाते हैं, किन्तु वाणी-रूपी भूषण ही सर्वदा स्थायी भूषण है।

२९. प्रश्न– मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ रूप क्या है?

उत्तर– मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ रूप विद्या ही है।

३०. प्रश्न– सत्सङ्गति मनुष्य को क्या-क्या प्रदान करती है?

उत्तर– सत्सङ्गति बुद्धि की मन्दता को दूर करती है, वाणी में सत्य का सञ्चार करती है, पाप को दूर करती है, चित्त को प्रसन्न रखती है और चारों ओर यश फैलाती है।

३१. प्रश्न– भगवान् विष्णु के प्रसन्न होने पर मनुष्य को क्या-क्या प्राप्त होता है?

उत्तर– भगवान् विष्णु के प्रसन्न होने पर मनुष्य को सदाचारी पुत्र, पतिव्रता पत्नी, प्रसन्न स्वामी, स्नेही मित्र, सच्चा सेवक, निश्चित मन, सुन्दर स्वरूप, स्थायी सम्पत्ति, विद्या से निर्मल मुख– ये सब मिलते हैं।

३२. प्रश्न– संसार में मनुष्य कितने प्रकार के होते हैं और कौन-कौन?

उत्तर– संसार में मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं– अधम, मध्यम और उत्तम।

३३. प्रश्न– किसका जन्म सफल है?

उत्तर– जिससे वंश की वृद्धि होती है, उसका जन्म सफल है।

३४. प्रश्न– धन की तीन दशायें कौन-कौन हैं?

उत्तर– धन की तीन दशायें हैं– दान, भोग एवं नाश। जो न तो दान देता है, और न ही स्वयं भोग करता है उसके धन का नाश हो जाता है।

३५. प्रश्न– राजनीति की तुलना किससे की गई है?

उत्तर– राजनीति की तुलना वेश्या से की गई है।

३६. प्रश्न– विद्या से अलंकृत दुष्ट मनुष्य का साथ क्यों छोड़ देना चाहिये?

उत्तर– दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययाऽलङ्कृतोऽपि सन्।
मणिना भषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः।।

३७. प्रश्न– मनुष्य को क्या करना चाहिए तथा क्या नहीं करना चाहिए?

उत्तर– मनुष्य को लोभ आदि अवगुणों का परित्याग करना चाहिए तथा सत्यता आदि सद्गुणों को ग्रहण करना चाहिए।

३८. प्रश्न– महात्माओं के स्वाभाविक लक्षण क्या-क्या होते हैं?

उत्तर– विपत्ति में धैर्य, उन्नति में क्षमा, सभा में वाक्पटुता, संग्राम में पराक्रम इत्यादि महात्माओं के स्वाभाविक लक्षण होते हैं।

३९. प्रश्न– सज्जनों का चरित्र कैसा होना चाहिए?

उत्तर– गुप्त दान देना, अतिथि का सत्कार, परोपकार करके मौन रहना, धन पाकर गर्व न करना– यह सज्जनों का चरित्र है।

४०. प्रश्न– मनुष्य के जीवन में सच्चा सुख क्या है?

उत्तर– आज्ञाकारी पुत्र, हितकारिणी स्त्री एवं सुख-दुःख में समान व्यवहारी मित्र– इन तीनों का लाभ मनुष्य के जीवन में सच्चा सुख है।

४१. प्रश्न– कान की शोभा कैसे होती है?

उत्तर– कान शास्त्रों के श्रवण से ही सुशोभित होता है, न कि कुण्डल पहनने से

४२. प्रश्न– सच्चे मित्र का भर्तृहरि ने क्या लक्षण बतलाया है?

उत्तर– पापान्निवारयति योजयते हिताय,
गुह्यं निगूहति गुणान् प्रकटीकरोति।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः।।

४३. प्रश्न– धैर्यवान पुरूष कैसे विचलित नहीं होते?

उत्तर– निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्यायात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।।

४४. प्रश्न– भर्तृहरि ने विचारपूर्वक कार्य करने के लिए कैसा निर्देश दिया है?

उत्तर– कर्मायत्तं फलं पुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणी।
तथाऽपि सुधिया भाव्यं सुविचार्यैव कुर्वता।।

४५. प्रश्न– कर्म की महिमा का वर्णन करते हुए नीतिकार ने क्या लिखा है?

उत्तर– फलं कर्मायत्तं यदि किममरैः किञ्च विधिना?
नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यो प्रभवति।।